ISSN 2231-6191

जन विकल्प

14-15

समकालीन लंबी कविताओं से एक यात्रा

विकल्प, तृशूर

मुक्त स्त्री का अनुभव संसार

रेखा सेठी

नीलेश रघुवंशी की कविताएँ स्त्री-कविता का नया प्रस्थान बिंदु हैं। 'नया' इसलिए कि उनके यहाँ स्त्री की छवि उनकी अन्य समकालीन रचनाकारों की अपेक्षा कुछ अलग है। उनका पहला काव्य-संकलन 'घर निकासी' १९९७ में प्रकाशित हुआ। इसी समय पर अनामिका और सविता सिंह कविता में स्त्रीवादी आग्रह को प्रखरता से प्रस्तुत कर स्त्री विमर्श की ज़मीन तैयार कर रही थीं। पितृसत्ता के अंतर्विरोध से जूझती स्त्री ने अपनी बेड़ियों को पिघलाकर जो स्वत्व अर्जित किया, उस आत्मचेतस की आंतरिक लौ कविता के परिदृश्य में स्त्री-कविता का ऐसा अध्याय निर्मित कर रही थी जिसमें बंद दरवाज़ों को खोला गया तथा स्त्री के 'मैं' का विस्तार समस्त स्त्री समाज के लिए हुआ। पर्सनल पॉलिटिकल होता गया और स्त्री-कविता ने अत्यंत साहस व स्वतंत्र अस्मिता के बोध पर जीवन और साहित्य, दोनों क्षत्रों में अपनी जगह बनाई। नीलेश की कविताएँ इसी समय में एक नई स्त्री से हमारी पहचान कराती हैं। यह नई स्त्री पितृसत्ता की जकड़न से उस तरह 'इंगेज' नहीं करती। ऐसा नहीं है कि पितृसत्ता द्वारा उत्पन्न सामाजिक अंतर्विरोधों का बोध उसे न हो लेकिन उसकी दृष्टि उससे अधिक उस संसार या उस नई दुनिया पर है जिसे यह लड़की अपनी शिक्षा से उत्पन्न आत्मविश्वास के दम पर प्राप्त करने निकली है। उसने अपनी दुनिया खुद बनाने का फैसला किया है। स्त्रियों के लिए तयशुदा जीवन के सुरक्षित ढाँचों को छोड़कर वह दुनिया मुट्ठी में करने निकली है। उसके पास सहज जीवन-बोध तथा अपने परिवेश को देखने की निस्संग दृष्टि है जो समकालीन हिंदी कविता में एक नया अध्याय जोड़ती है।

नीलेश की कविताओं की स्त्री अपने स्त्रीत्व के प्रति सहज व आश्वस्त है। इसलिए वहाँ स्त्री-पुरुष सबंधों में टकराहट की अपेक्षा सबंधों की ऊष्मा से भरा, सहज, आत्मीय निजी संसार है। कहते हैं, स्त्री के हिस्से की धूप संबंधों की गरमाहट को अपने साथ लिए आती है। आत्मीयता का घनत्व उसकी प्रत्येक मनोकामना में छाया रहता है। इस दृष्टि से नीलेश की पिता पर लिखी कविताओं तथा गर्भाधान से लेकर संतान के जन्म तक की 'पहली रुलाई तक की डायरी' को देखना चाहिए। इन कविताओं के महत्व को इंगित करते हुए परमानन्द श्रीवास्तव ने लिखा - "नीलेश से पहले भी दुनिया की बड़ी कवयित्रियाँ बच्चे के जन्म को पृथ्वी की महान घटना बताती आई हैं। यहाँ एक-एक पल की अनुभवात्मक संवेदना एक नाटकीय बतकही का रूप लेती है। यह पूरी श्रृंखला जन्म का हस्ताक्षर करने वाली रुलाई पर डायरीनुमा वक्तव्य है। स्त्रीवादी महाकाव्य की-सी संभावना लिए।"[१]

स्त्रीत्व को मातृत्व से अभिन्न मान लिया गया है। स्त्री-कविता की परंपरा में सुभद्राकुमारी चौहान की कविताएँ और कहानियाँ बरबस याद आने लगती हैं जिनमें मातृत्व के आँचल की छाँव अपनी संतान के साथ-साथ अन्य सभी संबंधों को शीतलता प्रदान करती है। मातृत्व का भाव मानव मात्र के प्रति व्यापक करुणा में बदल जाता है। समसामयिक स्त्री-चिंतन में 'मातृत्व' तथा 'स्त्रीत्व' के

बीच सबंध को कुछ अलग ढंग से पढ़ा गया है। गर्भ धारण करने और जन्म देने की सामर्थ्य, ब्रह्मा की स्पृहा में, स्त्री देह में देवत्व का आलोक प्रतिष्ठित करती है लेकिन यही सामर्थ्य उसे पुरुष के लिए उस खेत में बदल देती है जिसमें वह बीज डालता है और अपनी वंश-बेल बढ़ाता है। स्त्री मात्र माध्यम बन जाती है जिस पर अधिकार कोई और रखता है। स्त्री देह और यौनिकता की इच्छा-आकांक्षाओं पर नैतिकता की पहरेदारी जिस सुख या आनंद की परिकल्पना को वर्जित कर पाप की सीमाओं में धकेलती है, मातृत्व उस भूगोल का सुखद टापू है। इसी से वह स्त्री के स्त्रीत्व की पूर्णता भी है लेकिन मातृत्व स्त्री से बहुत त्याग माँगता है। यह सेवा का जीवन है जिसे चुनने से स्त्री को अपना वजूद भूलकर सिर्फ अच्छी माँ का किरदार निभाते हुए जीवन जीना है जिसमें कोई भी चूक होने से वह स्वयं को माफ़ नहीं कर पाती। स्त्रीत्व और मातृत्व में द्वन्द्व की स्थिति होने पर संबंधों के सामाजिक ढाँचे के अनुसार स्त्री द्वारा मातृत्व को चुना जाना ही अपेक्षित है। संभवतः यही कारण है कि स्त्री-मुक्ति के संघर्ष गर्भपात के अधिकार को स्त्री के मूल अधिकारों में शामिल करते हैं।

पितृसत्ता ने जिस रूप में स्त्री के मातृत्व का उपयोग स्त्री को कमज़ोर बनाने के लिए किया है उससे अनेक आशंकाएँ जन्म लेती हैं। 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में महादेवी ने समाज और परिवार की इस दुरभिसन्धि को बेनकाब किया है। वे लिखती हैं - "मातृत्व की गरिमा से गुरु और पत्नीत्व के सौभाग्य से ऐश्वर्यशालिनी होकर भी भारतीय नारी अपने व्यावहारिक जीवन में सबसे अधिक क्षुद्र और रंक कैसे रह सकी, यही आश्चर्य है। समाज ने पुरुष की सहायता पर इतना निर्भर कर दिया कि उसके सारे त्याग, सारा स्नेह और सम्पूर्ण आत्म-समर्पण बंदी के विवश कर्त्तव्य के समान जान पड़ने लगे।"[२] महादेवी ने आर्थिक स्वातंत्र्य के अभाव को स्त्री की शोचनीय दशा के लिए उत्तरदायी माना है और उसी संदर्भ में संभवतः पहली बार वे इतने खुले शब्दों में कह रही हैं कि किस तरह परिवारों के भीतर मातृत्व के नाम पर स्त्री को अधिकारों से वंचित करने का उपक्रम संस्थाबद्ध ढंग से किया गया। विश्व के सभी स्त्री आंदोलनों के समक्ष स्त्री के मातृत्व का प्रश्न, यक्ष-प्रश्न बना रहा है। यह स्त्री के स्त्रीत्व को पूर्णता प्रदान करता है और उसे कमज़ोर भी करता है। १९७६ में अमरीकी कवि एडरिएन रिच ने अपनी पुस्तक 'ऑफ वुमन बॉर्न' में मातृत्व की संकटपूर्ण स्थिति की जटिलता की ओर इंगित किया तो सारा रूडिक ने मातृत्व को अद्वितीय, अभूतपूर्व और जीवन को बदल देने वाले अनुभव के रूप में व्याख्यायित किया है जो संसार में शांति की प्रतिष्ठा करता है। दरअसल पिछले कुछ वर्षों में मातृत्व के इस अनुभव के इर्द-गिर्द व्यापक सैद्धांतिकी तैयार हुई है।

नीलेश इस तरह की सैद्धांतिकियों से परे हैं लेकिन 'पहली रुलाई तक की डायरी' की इक्कीस कविताओं में अपने अजन्मे बच्चे से संवाद का तिथिवार ब्यौरा, संवेदना की जिस सघन अनुभूति को साकार करता है वह हिंदी कविता में ही नहीं विश्व कविता में भी दुर्लभ होगा। स्त्री के लिए मातृत्व का अनुभव सहज जीवन-बोध का सबसे खूबसूरत अनुभव है। यह साधारण होकर भी असाधारण है। सब स्त्रियों के लिए समान होकर भी यह हर एक के लिए अनूठा है, अदभुत एवं अद्वितीय। जो स्त्री इससे गुज़रती है वह इसे अपनी तरह पहचानती है। नीलेश ने इस ख़ास स्त्री-अनुभव के अभूतपूर्व बिम्ब देकर हिंदी कविता को समृद्ध किया है। "इन दिनों एक ऐसे अनुभव से गुज़र रही हूँ/ जिसे सिर्फ जिया जा सकता है, कहा नहीं जा सकता है,/ बहुत विराट है यह अनुभव, सुखद और कष्टप्रद दोनों/ x x x x x x / रहस्यों से भरी यात्रा है यह/ कहीं सुख की बूँदें, कहीं

अनंत कष्ट"[३]

सुख-दुःख के धूप-छाँही रंग का अनुभव मातृत्व की सबसे सुखद अनुभूति है। नीलेश ने इसे इस अर्थ में विशिष्ट बना दिया कि इसका तिथिवार ब्यौरा, इस पूरे वर्णन को विश्वसनीय बनाता है। जैसे कोई अपना बहुत धीमे-से अपने जीवन का कोई राज़ बता दे। इन कविताओं का टोन भी हलके फुसफुसाहट भरे स्वर जैसा है। रोमांच और ख़ुशी से भरी स्त्री और न जाने किस अज्ञात भय से डरी स्त्री, धीरे-धीरे गर्भस्थ शिशु से संवाद स्थापित कर रही है। अपने इस एकांतिक अनुभव में उसे माँ और मोहल्ले की सारी स्त्रियाँ याद आती हैं। जब अपने ऐसे निजी ख़ालिस अनुभवों को नीलेश अपनी कविताओं में लाती हैं तो वे अनुभव स्त्री के एकांत की परिधि लाँघकर स्त्री के साझा अनुभवों में तब्दील हो जाते हैं। न जाने किस-किस की कितनी सलाहें उस स्त्री के एकांत में घर बनाने लगती हैं। भीतर पलता नन्हा शिशु माँ की देह और उसके मन पर कब्ज़ा कर लेता है। इस पल-पल बदलते मन को बूझने की कोशिश करती माँ बस एक ही उत्कंठा से भरी है। 'क्या मेरी तरह तुम्हें, मुझे देखने और बातें करने का मन नहीं करता?' कभी उत्कंठा तो कभी आशंका घेर लेती है - 'भीतर ही भीतर कैसा लग रहा है तुम्हें, कहीं अँधेरा, तो नहीं लगता'। माँ और शिशु की इस आत्मिक बातचीत में वह एक-एक दिन गिनती है - 'पूरे पाँच महीने के हो गए हैं,' 'शायद तुम अब आने वाले हो'। इन पंक्तियों में सम्बन्ध की प्रगाढ़ता नज़रों से ओझल नहीं होती। ऐसा सुंदर संबंध और इससे जुड़ा आत्मीय मोह, इससे अंतरंग इस संसार में कुछ हो भी नहीं सकता।

बच्चे की हर थिरकन, हर धड़कन, हर करवट को माँ गर्भ से ही पहचानने लगी है। नीलेश इसे एक-मुखी अनुभव नहीं बनाती। कभी इतनी ममता कि स्नेह से पूरा आसपास महक उठता, तो कभी - 'मन में आता है, कान खींचू तुम्हारे, धीरे से दो-एक चपत भी जड़ दूँ।' इन संवादों में नीलेश अपने गर्भ में पलती नन्हीं जान के संकेतों में बतरस लेने लगती हैं और उसे बाहर की दुनिया की खबर भी देती हैं। परमानन्द श्रीवास्तव कहते हैं कि यह मात्र एकालाप नहीं है - "इस कविता श्रृंखला में जो चलने वाला संवाद है वह महज़ आत्मालाप नहीं है। संवाद वह इस अर्थ में है कि गर्भ में यह आंगिक बतकही मौन और भाषा के बीच पुल सरीखा है।"[४] एक बिंदु जिस पर इस नई माँ का ध्यान बार-बार अटक जाता है वह है कि उसका शिशु कौन होगा... कोई नन्हीं परी या राजकुमार। आज के समय में यह प्रश्न अत्यंत विकट है। छोटे गाँवों से लेकर बड़े शहरों तक बेटी को तो पैदा होने का हक़ ही नहीं। भ्रूण के लिंग का निश्चय उसके अस्तित्व को निश्चित करता है लेकिन नीलेश की भोली उत्सुकता चौथे महीने से नवें महीने तक अपने भीतर पलते निर्गुण को, परी या राजकुमार का सगुण-साकार रूप देना चाहती है। इन कविताओं की माँ अपने भीतर पल रहे संसार को उत्सुकता से देखती है, उसे अपने भीतर जगह देती है उसकी हलचलों को अपनी देह में महसूस कर आनंदित होती है।

बच्चे को प्यार करते-करते माँ, बच्चे के पिता को भी एक नई आत्मीयता से पहचान रही है। पिता भले ही गर्भ के अनुभव से न गुज़रे लेकिन माँ की यात्रा का सहयात्री अवश्य है। गार्हस्थ प्रेम के इस सुखद अनुभव को उमंग भरी तरंग से अभिव्यक्त करते हुए कवयित्री लिखती है - "मुझे तुम्हारे साथ-साथ तुम्हारे पापा पर भी बहुत प्यार/ आता है इन दिनों/ तुम मुझे परेशान करते हो, मैं उन्हें"।

इस पूरे वृतांत को नीलेश जन्म देने की प्रक्रिया तक ले जाती हैं। प्रसव पीड़ा की यातना, साक्षात नरक से गुज़रने जैसी है लेकिन उसके बीच भी उसकी चेतना बच्चे के आने को दर्ज कर लेती है। रोने की आवाज़ से वह अपने राजकुमार को पहचान लेती है और घड़ी की सुइओं का समय देख घर की छत पर आने वाली साँझ से उसका सम्बन्ध जोड़ लेती है। सृष्टि के इस सबसे दुष्कर अनुभव को नीलेश इतनी सादगी से निभा ले जाती है। "यह तो नरक है, नरक! जन्म देना, यातना से गुज़रना है/ यह क्या दे रहे हो तुम अपनी माँ को?/ आँखें मूँदी जा रही हैं अब/ एक-एक कर, मेरे आसपास जो मेरे अपने थे, कमरे में रह गए/ डॉक्टर्स और नर्सों के साथ लेबर-रूम में जा रही हूँ मैं/ प्रसवपीड़ा को कोई और नाम देना चाहिए/ XXX XXX / ये ये ये.../ तुम्हारे रोने की आवाज़ सुनाई दी/ रोने की आवाज़ से लग रही है, तुम्हें नन्हें-से बदमाश राजकुमार हो/ इतनी ज़ोर से क्यों रो रहे हो बेटे?"[५]

इन कविताओं के सन्दर्भ में नीलेश ने स्वीकार किया, "कविताओं की इस सीरीज़ ने कुछ हद तक या कहें कि काफी हद तक एक कवि के रूप में स्त्री होने को प्रभावित किया।... यह एक अनजानी यात्रा थी, जैसे-जैसे आगे बढ़ती गई, वैसे-वैसे कहती गई। सारे अनुभव कहन का हिस्सा होते चले गए। कभी रोमांच, कभी जोखिम, कभी खीझ, कभी सुख, कभी दुख, कभी यह भी लगा कि अरे बाप रे ये क्या हो गया। जो छूट गए थे, वे भी इस समय बहुत याद आने लगे। मैं अकेली नहीं थी, कोई हर समय मेरे साथ था।"[६] नीलेश रघुवंशी की कविताओं में स्त्रीत्व का वृत्त इस अनुभव से पूरा होता है। यह कविता स्त्री के अत्यंत निजी अनुभव की कविता होकर भी केवल स्त्री अनुभव तक सीमित नहीं है। स्त्रीवाद जिस बहनापे की बात करता है, वह भारतीय समाज के संदर्भ में और भी प्रासंगिक हो जाता है क्योंकि यहाँ स्त्री की दुनिया उसके एकांत की दुनिया नहीं है। वहाँ पूरा मोहल्ला, पूरा परिवार, आसपास का जन समाज उस जीवन में शामिल है। इसीलिए तो माँ बनने वाली माँ को इतनी सलाहें मिल रही हैं। समाज की इस बड़ी इकाई में स्त्री का व्यक्तित्व पूरी तरह घुल-मिल गया है। नीलेश ने समाज के इस परंपरागत फ्रेम को नकारने की अपेक्षा उसे उसकी सर्वंगीणता में ग्रहण किया। तथाकथित स्त्रीवादी आग्रह को स्त्री-कविता का यह स्वर प्री-कंडिशनड लग सकता है लेकिन जो उत्साह, जीवन-संग्राम से सीधे भिडंत का साहस एवं सहज स्वीकार कर लेने का भाव यहाँ है उसमें कहना मुश्किल है कि मुक्ति किसे चाहिए और किससे चाहिए। सविता सिंह ने नीलेश की इन कविताओं का स्त्रीवादी आलोचनात्मक पाठ करते हुए लिखा, "नीलेश की ये कविताएँ हमें पता देती हैं कैसे स्त्री अपने घरेलू बनाये जाने को स्वीकार करती है, उन संरचनाओं द्वारा परिभाषित हो उसका हिस्सा बनती है जिसे हम परिवार कहते हैं जिसमें वह अपनी असमानता को भी बर्दाश्त करती है। जबकि सत्य यह है कि व्यक्तिगत रूप में वह पुरुषों से श्रेष्ठ होती हैं। इसलिए भी कि उसने कभी ऐसे परिवार की संरचना नहीं की (ऐतिहासिक तौर), पर जिसमें उसने किसी भी व्यक्ति के शोषण या दमन को सैद्धांतिक रूप से जायज़ ठहराया हो। ... नीलेश की कविताएँ जिस तरह अपने अजन्मे बच्चे का सामाजीकरण करती हैं वह अपने पाठक को एक विलक्षण अंर्तदृष्टि देती हैं। यह इसलिए भी ज़रूरी है यहाँ कहना कि यहाँ एक सहज प्रयास दिखता है कि बच्चा समाज को पहले ही से उसकी पितृसत्तात्मकता में स्वीकार कर ले, हालाँकि यह प्रयास इन कविताओं में अनजाने ही होता है। 'ममत्व' या ममता भी कितना बड़ा सोशलाईज़िंग घटक हो सकता है नीलेश बिना केट मीचेल को पढ़े ही हमें इससे अवगत करा रही हैं। अजन्मे बच्चे से इस क्रूर संसार का सामना कराना कैसा कृत्य है? कैसी

विकट भावनाएँ यहाँ कार्यरत हैं? यहाँ वह अपने बच्चे को इस जीवन की कठोरता का परिचय अभी से दे रही हैं ताकि वह अपने मिलने वाले जीवन को जी सके। अच्छी बात यह है कि यह भी वह अपने पुराने अंदाज़, यानी हँसी मज़ाक वाली शैली में ही करती हैं।"[७]

इस लंबी टिप्पणी को उद्धृत करने का उद्देश्य उस परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत करना है जो इन कविताओं के पाठ को अलग दृष्टि से पढ़ने का आग्रह करता है। ऐसा कहते हुए भी सविता ने इस अनुभव के महत्व को स्वीकार किया है। यह प्रकृति की पुनर्रचना के समान है। भारतीय संदर्भ में विशेष रूप से मातृत्व का अनुभव, स्त्री के उदात्तीकरण का पर्याय है। वे आगे लिखती हैं - "ज्ञान, अनुभव, संवेदना और सहज हास से रचा जाता हुआ संशयों का स्त्री संसार पत्थर पर उगी दूब की तरह प्रकट होता है, अपने विकट सौंदर्य के साथ और अपने देखने वाले को ठिका देता है।"[८] ऐसे स्थलों पर बरबस ही कृष्णा सोबती के उपन्यास 'ऐ लड़की' में अम्मू की टिप्पणी याद आ जाती है -"लड़की, बच्चा बनाना एक तरह का यज्ञ ही है री; इन दिनों औरत पूरे ब्रह्मांड से शक्ति के कण खींच कर अपनी ऊर्जा ज्वलित कर लेती है। अपने में कुछ विशिष्ट ही जीती है। अपने अंदर का आकाश निरखती है। जीव उत्पन्न करने में उसकी गूँथ-गूँज कुदरत से मिली रहती है।"[९]

प्रजनन का रहस्य-रोमांच स्त्री जीवन में अलग ही है। बहुत कम स्त्री रचनाकारों ने इस पूरे अनुभव को अभिव्यक्त किया है। इस दृष्टि से जैसा पहले भी कहा नीलेश की ये कविताएँ बेजोड़ हैं लेकिन जो सत्य इस पूरे अनुभव को समस्याग्रस्त करता है वह स्त्री-मुक्ति का बुनियादी अधिकार है। यदि मातृत्व स्त्री के स्वतंत्र जीवन को बाधित करता है और पितृसत्तात्मक ढाँचे में स्त्री की ग़ुलामी का एक और अस्त्र बनता है तो निश्चय ही उस पर दूसरी तरह विचार करना आवश्यक हो जाता है। सविता सिंह ने इन कविताओं के माध्यम से स्त्री जीवन की इसी जटिलता की ओर संकेत किया है -"स्त्री जीवन का सुख और उसकी त्रासदी हमारे समक्ष नीलेश इस मासूमियत से रखती हैं कि धीरे-धीरे कविता में बढ़ते हुए किसी घातक सत्य से सामना हो जाने का डर बना रहता है। ऐसा घातक सत्य जो मुक्ति की कामना से साक्षात्कार करा दे। फिर यह सभी कुछ, अस्तित्व की यह सारी राजनीति भी जैसे तत्क्षण बेमानी हो जाती है। अपनी इन कविताओं में नीलेश इस तनाव को बनाए रखती हैं - वह तनाव जो स्त्री के स्त्री होने तथा माँ होने के बीच बना रहता है। माँ बनने का अर्थ इस संसार मे धँसना है, इसकी यातना को अपने ही आँचल से अपनी आँखों को पोंछते हुए स्वीकार करना है।"[१०]

नीलेश के यहाँ स्थिति कुछ भिन्न है। उनका कविता संसार अपने आसपास के छोटे-बड़े अनुभवों से निर्मित निम्न मध्यवर्गीय जीवन का महाख्यान है। निम्न मध्यवर्गीय परिवार में बड़ी हुई इस लड़की ने पिता को ढाबा चलाते देखा है और ढाबे की भट्टी की उस आग में, जीवन के अभावों की अग्नि के ताप को महसूस किया है। उसका पूरा परिवार इस जीवन संघर्ष में शामिल है। इन जीवन स्थितियों का पूरा ब्योरा 'एक कस्बे के नोट्स' शीर्षक से उनके आत्मकथात्मक उपन्यास में मिलता है। पिता या भाई भी किसी बेहतर स्थिति में नहीं हैं। इसीलिए नीलेश की कविताओं में मुक्ति की परिकल्पना स्त्री-पुरुष की जेंडर सीमाओं के परे सबकी मुक्ति का संकल्प है। हम निजी जीवन में जेंडर की जिन सीमाओं के पिघलने की कामना करते हैं नीलेश की कविताओं में वह कहीं-कहीं संभव होता दिखता है। वह एक तरह से उस पूरी युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती हैं जो गाँव-कस्बों से निकलकर सुनहरे भविष्य के सपने संजोने शहरों का रुख करते हैं। जीवन के

छोटे-बड़े सुख-दुख, हैरान परेशान कर देने वाली चुनौतियाँ सब उनके संघर्ष में शामिल है लेकिन निराशा नहीं है। अपनी सकारात्मक टोन में ये कविताएँ स्त्री जीवन का एक नया सौंदर्यशास्त्र रच रही हैं। अरविंद त्रिपाठी ने नीलेश रघुवंशी की कविताओं के संदर्भ में लिखा है, "आज के भारतीय समाज की एक औसत लड़की का वह चेहरा है जो अभी जीवन की यात्रा में है। यह पश्चिम के नारीवाद के विरुद्ध खड़ा भारतीय स्त्री का जीवित धड़कता चेहरा है। स्त्रीवाद की इस पहचान और कविता के आख्यानात्मक विन्यास के लिए उनकी कविताएँ स्त्री-कविता को एक भिन्न आयाम देती हैं।"[११]

नीलेश ने स्वयं को स्त्री-विमर्श की अवधारणाओं से अलग रखा है। यहाँ तक कि 'स्त्री विमर्श' शीर्षक से उनकी एक कविता है जिसमें उन्होंने विमर्श को इसलिए अस्वीकार कर दिया क्योंकि उनकी दृष्टि में उसकी प्रकृति समावेशी नहीं है। वहाँ 'बाई' और 'मालकिन' की मुक्ति का सवाल समान धरातल पर नहीं है। वे कामगार स्त्रियों और संभ्रांत कुलीनतावादी स्त्रियों को एक दृष्टि से देखती है और मानती है कि जिस दिन इन दोनों वर्ग की स्त्रियों की मुक्ति का सपना एक जैसा होगा वही स्त्री मुक्ति का सच्चा सपना होगा। उन्होंने अपनी कविताओं में स्त्री सौंदर्य को भुनाने वाली बाजारवादी नीतियों के प्रति भी सचेत किया है। स्त्री देह का बाज़ार जिस तरह लैंगिक असमानता को दृढ़ करता है तथा स्त्री को अलग-अलग समझौते करने के लिए विवश करता है, उस ओर भी उनका ध्यान गया है। नीलेश की कविताओं में स्त्री मुक्ति का स्वप्न, सामूहिक मुक्ति के स्वप्न में रूपांतरित होता है। उनकी निगाह स्त्री और पुरुष दोनों के छोटे बड़े संघर्षों पर है। उनकी दुनिया में हर वह व्यक्ति है जो अपने सर्वाइवल के लिए संघर्ष कर रहा है। उसके भीतर राजनीतिक सर्वसत्तावाद, लोकतांत्रिक व्यवस्था तथा बाज़ारवाद पर भी गंभीरता से विचार किया गया है। यह कविता का एक बड़ा कैनवस है जिसमें असमानता और विषमता के कई रूप हैं और उनका पुरज़ोर विरोध भी।

नीलेश की स्त्री दृष्टि में स्त्री मुक्ति का एक ही मूल मंत्र है कि स्त्री बेखटके अपना जीवन जी सके। उन्होंने अपनी कविता 'बेखटके' में बेखटके जीवन जीने की इच्छाओं का विस्तृत ब्यौरा दिया है। इन आकांक्षाओं में रात बारह का शो देखकर लौटना, रेलवे प्लेटफार्म पर घूमना, जेब में हाथ डाले कहीं भी चले जाना, औरों द्वारा ऐसा-वैसा न समझा जाना, नुक्कड़ की गुमटी पर चाय पीते हुए रात का चित्र खींच पाना, आदि छोटी-छोटी इच्छाओं की ऐसे फेहरिस्त हैं जिससे कि स्त्रियों को सुरक्षा के नाम पर हमेशा वर्जित किया जाता रहा है। नीलेश की आकांक्षा है कि 'आधी रात में भी अगर जीने का पूरा मन हो' तो वह स्थिति जिसे पूरा जीना कहते हैं स्त्री को सुलभ होनी चाहिए। इस पूरे जीने को हर स्त्री अपने लिए खुद परिभाषित करती है। यह केवल स्त्री की इच्छा और अधिकार का सवाल ही नहीं है यह समाज के पटचित्र पर टंगा प्रश्न है। 'बेखटके' कविता में ही 'जेंडर न्यूट्रल' होने की एक दिशा भी प्रस्तावित है।

अगर स्त्री की कोई पहचान हो सकती है इस दृष्टि से तो वह केवल एक नागरिक की तरह, जिसे बराबरी के सारे अधिकार संवैधानिक दृष्टि से प्राप्त हैं। कविता में स्त्री द्वारा नागरिक होने कि पहचान का आग्रह स्त्री संघर्ष के आगमी चरण का सूत्रपात है। स्त्री अधिकारों की जमीन केवल स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता को जताने से तैयार नहीं होगी उसका आधार, सामाजिक, आर्थिक मुख्यधारा में बराबरी से निर्मित हो सकता है। इसलिए नीलेश का कहना कि 'कोई मुझे देखे तो देखे /एक नागरिक

की तरह' कविता और समाज दोनों ही दृष्टियों से स्त्री-कविता का सशक्त प्रस्थान बिन्दु है।

नीलेश ने अपने पिता पर बहुत सारी कविताएँ लिखी हैं। पहली पगार से पिता के लिए पानदान खरीदने का सपना है। 'पानदान', 'टेलीफोन पर पिता' , 'पिता की पीठ', 'यात्रा करते पिता', 'पिता और कंप्यूटर' आदि अनेक कविताओं में उन्होंने पिता का ऐसा चित्र खींचा है जो अत्यंत मानवीय एवं संवेदनशील है। यद्यपि पिता और पितृसत्ता से स्त्री-कविता का तनावपूर्ण रिश्ता है लेकिन

जिस तरह यहाँ पिता प्रस्तुत होते हैं, जिन्होंने हर मोड़ पर बेटी का साथ दिया है जिनका अपनी बेटी से संबंध शासक और शासित जैसा नहीं है। उनके प्रति कवयित्री संवेदना और आभार व्यक्त करती हैं। इन कविताओं के माध्यम से केवल पिता और पुत्री का संबंध ही नहीं दिखता बल्कि ऐसी व्यवस्था भी दिखती है जहाँ स्त्री-पुरुष के बीच आपसी संबंध प्रेम और करुणा से भरे भी हो सकते हैं। फिर वे पिता और पुत्री के संबंध हो या पति-पत्नी के। गार्हस्थिक प्रेम के कुछ अनूठे चित्र, नीलेश की कविताओं में यह बोध जगाते हैं कि अभिन्नता के ये संबंध अत्यंत प्रिय हो सकते हैं। इनका एक अनन्य सुखद साझेदारी का रिश्ता भी है। परमानन्द श्रीवास्तव ने इस ओर संकेत किया है -"नीलेश रघुवंशी को यह स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं है कि दाम्पत्य-रस उनके काव्यानुभवों को एक स्थानीय देशज चमक देता है...।"[१३] नीलेश के लिए कविता सामाजिक होने की घोषणा किए बग़ैर गहरी एकांतिकता में भी पारिवारिक वृत्तान्त बन सकती है।

'पहली रुलाई तक की डायरी' की कविताओं को एक समर्थ कामकाजी स्त्री के जीवन में आश्वस्ति के बोध से भी देखना होगा। यह आश्वस्ति अपने आप में विश्वास जगाती है। बराबरी के आग्रह से संबंधों में अनुराग का आलोक जगमगाती है। स्त्री को अपने स्त्रीत्व में सहज करती है। स्त्री-मुक्ति तथा जेन्डर समानता की भविष्य की दिशाएँ इन्हीं रास्तों के बीच से होकर गुज़रती हैं, जिन्हें नीलेश ने बार-बार अपनी कविताओं में संभव बनाया है। इसी भाव से उनकी कविताएँ स्त्री-कविता का नया प्रस्थान बिन्दु बनती हैं।

संदर्भः

१. परमानन्द श्रीवास्तव, कविता का उत्तर जीवन, पृ. १८९
२. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कडीयाँ, पृ. ८८-८९
३. जंजीर खींचने का मन, पानी का स्वाद, पृ. ९८
४. परमानन्द श्रीवास्तव, कविता का उत्तर जीवन, पृ. १८९
५. इतने रसीले, पानी का स्वाद, पृ. ९५
६. पानी का स्वाद, पानी का स्वाद, पृ. १०४
७. नया ज्ञानोदय, मई २०१७, पृ. १६
८. सविता सिंह, https://www.shabdankan.com/2014/04/feminist-literary-criticism-in-hindi-literature-initial-effort-savita-singh.html?m-1
९. कृष्णा सोबती, ऐ नड़की, पृ. ५५
१०. सविता सिंह, https://www.shabdankan.com/2014/04/feminist-literary-criticism-in-hindi-literature-initial-effort-savita-singh.html?m-1
११. अरविन्द श्रिपाठी, जनसत्ता, २४ मई १९९८
१२. बेखटके, खिड़की खुलने के बाद, पृ. १००
१३. परमानन्द श्रीवास्तव, कविता का उत्तर जीवन, पृ. १८७-१८८

अन्य संदर्भः

Rich, Adrienne, 1995, of Woman Born : Motherhood as experience and institution. New York Norton

Ruddick, Sara, 1989, Maternal Thinking : Towards a Politics of Peace, New York : Ballantine Books.